द्वितीय अध्याय

तुलसीदास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

तुलसीदास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

तुलसीदास का स्थान मध्यकालीन भारतीय इतिहास में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। तुलसीदास साहित्यिक, धार्मिक तथा नैतिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में महान प्रतिभा–सम्पन्न महाकवि हुए हैं। प्रख्यात इतिहासकार स्मिथ के अनुसार –" तुलसीदास अपने युग में भारत के सर्व महान व्यक्ति थे, उनका व्यक्तित्व अकबर से भी बढ़कर था। ये करोड़ों नर–नारियों के हृदय पर विजय प्राप्त कर चुके थे।[1]"

प्राचीन भारतीय मनीषी सदैव ही अपने सम्बन्ध में मौन रहे। तुलसीदास जी ने भी अपने सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा है, जिसके कारण इनके जीवन परिचय को लेकर विवाद है। वैज्ञानिक एवं ऐतिहासिक अनुसंधानों के आधार पर उनके जीवन की एक रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, जिसका आधार मुख्यतः जनश्रुति है। तुलसीदास जी जन्मतिथि एवं जन्मस्थान को लेकर विद्वानों के मतैक्य नहीं है। विभिन्न विद्वानों ने इनके जन्मस्थान, जन्मतिथि आदि के सम्बन्ध में भिन्न–भिन्न मत प्रस्तुत किये हैं। विद्वानों के राजापुर, तारी, सोरो, रामपुर, काशी, अयोध्या आदि माना है।

तुलसी का जीवन परिचय

1. **राजापुर–** आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा0 श्यामसुन्दरदास, माताप्रसाद गुप्त आदि विद्वानों ने तुलसीदास का जन्मस्थान रामपुर को माना है।

   माता प्रसाद गुप्त ने राजापुर को तुलसीदास की जन्म–भूमि मानने के पक्ष में निम्न प्रमाण प्रस्तुत किये हैं।

1. राजापुर में तुलसीदास का मकान।
2. मकान में उनकी मूर्ति।
3. राजापुर में अयोध्या काण्ड की एक प्रति।
4. राजापुर के मुआफीदारी को राजाओं द्वारा प्राप्त सनदें।
5. श्री हनुमान, सिद्धि– दात्री भवानी आदि देवालय।

   परन्तु उपर्युक्त प्रमाणों से यह निर्णय नहीं लिया जा सकता कि राजापुर में ही तुलसी का जन्म हुआ।

गुप्त जी के मत का खण्डन करते हुए डा0 राजाराम रस्तौगी कहते हैं कि राजापुर तुलसीकी साधना भूमि है न कि जन्म स्थान क्योंकि वहाँ पर मन्दिर कुटी, मुर्ति

जो चिन्ह है उनका महत्व इसी दृष्टि से है। अतः राजापुर को इस तर्क के आधार पर जन्म स्थान माना समुचित नहीं है।"

2. तारी– ग्रियर्सन ने 1983 ई0 में एक पुस्तक का विमोचन किया " नोटस ऑन तुलसीदास" उसके अनुसार तुलसी का जन्म स्थान तारी माना गया है। परन्तु शिवनन्दन सहाय एव डा0 राजाराम रस्तौगी ने इस कथन को जनश्रुतियों पर आधारित माना है। अतः तारी को जन्म स्थान मानना उचित प्रतीत नहीं होता है।[2]

3. काशी– रजनीकान्त शास्त्री ने विनयपत्रिका के आधार पर काशी को तुलसीदास का जन्मस्थान माना है।

"यह भरतखंड समीप सुरसरि थल भलौ संगति भली।[3]

4. हाजीपुर– विल्सन ने चित्रकूट के निकट 'हाजीपुर' नामक ग्राम को जनश्रुति के आधार पर तुलसीदास की जन्म भूमि माना है, परन्तु इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है, सम्भव है कि राजापुर के ही भ्रमवश 'हाजीपुर' कह दिया गया हो।[4]

5. अयोध्या– पं0 चन्द्रावली पाण्डेय ने अयोध्या को तुलसी का जन्म स्थान माना है, परन्तु अनेकों विद्वानों ने इसे तुलसी का साधानात्मक स्थान माना है।[5]

6. सौरो– पं0 रामनरेश त्रिपाठी ने रामचरित्रमानस के बालकाण्ड के आधार पर तुलसी का जन्मस्थान सौरो माना है, उनके अनुसार–

"मै पुनि निज गुरू सन सुनी, कथा सो सूकर खेत।
समुझी नाहि तीस बालपन, तब अति रहेऊ अचेत।।"[6]

सौरो के समर्थक रामचरित्रमानस की पंक्तियों में आये हुए सकूर खेत से अर्थ सौरो से लगाते हैं, परन्तु भाषा विज्ञान के दृष्टिकोण से अनेक विद्वानों ने भ्रामक मानकर इस मत का खण्डन किया है। अतः साधना के आधार पर तथा रामचरित्रमानस के बालकाण्ड में उपलब्ध उक्ति के आधार पर आधुनिक युग के विद्वानों ने सौरो को ही अधिक जन्मस्थान का प्रमाणिक स्थल माना है। बाँदा जिले के गजेटियर में स्पष्ट लिखा हुआ मिलता है कि राजापुर जहाँ बसा है, वहाँ तुलसी आये थे और वह एटा जिले की कासगंज तहसील के सौरो गाँव के निवासी थे–

" It is said that in the region of Akbar, a holy man named Tulsidas. a resident of Soron in Kasganj Tashil of the Eath district. Came to jungle on the banks of the Jumana where Rajdarbar now stamps and devoted himself toprayee and medita-

tion..... this is of course Tulsidas. The author of the Ramayan and his house is still of the T own....."[7]

गोस्वामी तुलसीदास की जन्मतिथि के विषय में इतनी खोज के बावजूद भी अभी तक कोई निश्चित प्रमाणिक तिथि निर्धारित नहीं हो पायी है। इस सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न मत हैं :–

(क) 'मूलगोसाई चरित्र' के रचियता वेणी माधवदास गोस्वामी जी का जन्म संवत 1556 है, परन्तु यह कल्पना भी जनश्रुतियों पर आधारित है,

(ख) शिव सिंह सेंगर ने अपने ग्रन्थ 'शिव सिंह सरोज' में लिखा है कि इन महात्मा का जन्म–संवत 1583 के लगभग हुआ था, परन्तु सेंगर महोदय की इस कथन पर विद्वान सहमत नहीं हैं।[8]

(ग) विल्सन ने अपनी पुस्तक 'ए स्केच ऑफ द रिलिजस सेक्टस ऑफ द हिन्दूज' में तुलसीदास का जन्म सं0 1600 मानते हैं। किन्तु माता प्रसाद इस मत का खण्डन करते हैं।[9]

(घ) डा0 जार्ज ग्रियर्सन ने विभिन्न सर्वाधिक विश्वस्त प्रमाणों के आधार पर सं0 1568 माना है। अतः यह मत सर्वाधिक प्रमाणिक अठाहरवीं शताब्दी के कवित तुलसीदास की घट रामायण से भी पुष्टि हो जाती है।

संवत पन्द्रह सौ0 नवासी। भादो सुदी मंगल एकादशी।।[10]

तत्कालीन साहित्यकारों ने भी अपनी कृतियों में गोस्वामी जी के सम्पूर्ण जीवन का वर्णन हुमायूँ (1530–1554) सम्राट अकबर (1555–1605ई0) तथा जहाँगीर (1605–1627) इन पाँव मुस्लिम राजाओं के शासन–काल में व्यतीत किया। अतः सं0 1589 (सन 1532 ई0) इनका जन्म विशेष समुचित प्रतीत होता है।

रामचरित्रमानस के आधार पर इनकी माता का नाम हुलसी था, तथा इनके पिता का नाम आत्माराम दूबे था।[11] गोस्वामी तुलसीदास ने पग–पग पर अपनी कृतियों गुरू वन्दना तथा गुरू महिमा के पद लिखे है, रामचरित्रमानस के वन्दनात्मक एक सोरठे के आधार पर इनके गुरू नर हरिदास थे, जिनकी तुलसीदास ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।

बंदऊँ गुरूपद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु वचन रवि कर निकर।।[12]

तुलसीदास की पत्नी का नाम रत्नावली था, जिसकी पुष्टि तुलसीकृत

रत्नावली के तीसरे दोहे से होती है।

हाइ बदरिका बन भई हों बामा बिसबेलि।
रनावलि हो नाम की रसहि दयो विसमेलि।।[13]

गोस्वामी तुलसीदास को सर्व–सम्मति से ब्राहमण माना गया है, शरीर से सुन्दर थे, कवितावली में इनके बारे में कहा गया है

भील भातभूमि, भले कुल जन्म, समाज सरीर लौ लहि कै।।"[14]

इनके जन्म के उपरान्त ही माता–पिता का स्वर्गवास हो गया था, अतः इनका जीवन कष्टों से परिपूर्ण रहा, कवितावली और विनयपत्रिका में उनके ह्दय विदारक उदगार अनायास फूट पड़े है, पेट भरने के लिए उन्हें दर–दर की भिक्षा माँगनी पड़ी। पुण्यात्मा गुरू नरहरि ने इस होनहार बालक को दुरावस्था से निकालकर उसकी शिक्षा का प्रबन्ध किया। युवावस्था में रत्नावली नाम की स्त्री से इनका विवाह हुआ। परन्तु यह वैवाहिक सम्बन्ध कुछ समय पश्चात ही टूट गया, एक जनश्रुति के अनुसार अपनी पत्नी के फटकार पूर्ण उपदेश से गोस्वामी तुलसीदास के वैराग्य–नेत्र उदीप्त हुए थे, विरक्तावस्था में आकर तुलसीदास के ह्दय में दबी हुई रामभक्ति की धारा का पुनः उद्ेक और उसके प्रवाह के साथ ही साथ तुलसीदास ने भारत के अनेक क्षेत्रों में भ्रमण किया। इसी यात्राक्रम में भारत की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक आदि समस्त क्षेत्रीय परिस्थिति को अपनी आँखों से देखकर उसका यर्थाथ चित्र अपने ह्दय में अंकित करके अपनी रचनाओं में लिपिबद्ध किया। जनश्रुति के आधार पर तुलसीदास की मृत्यु 1680 में सावन की शुक्ला सप्तमी को गंगा के तट पर हुई।

संवत सोरह सै असी, अंसी गंग के तीर।
सावन शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर।।[15]

तुलसी के व्यक्तित्व का आयाम भी विराट है। विद्वानों ने अन्तः साध्य और वहि साक्ष्य के द्वारा उसे नाना रूपों में देखने का प्रयास किया है। तुलसी जाति से ब्राहमण थे। उनकी भक्ति रामरसक थी। वे संस्कृत और महान कवि तथा लोकदृष्टा थे। सात्विक वृत्ति से जीवन–यापन करते थे। तुलसीदास गंगाजल पीकर और दैनन्दिन रामभजन कर परमसंतोष का अनुभव करते थे। परिवार से कोई सहानुभूति एवं सहयोग नहीं मिला। उनके माता–पिता ने उन्हें जन्म के उपरान्त त्याग दिया था, जिससे उन्हें दर–दर दो–दो दानों के लिए भटकना पड़ा था। परन्तु ऐसी भीषण परिस्थितयों में भी

तुलसीदास कभी अपने मार्ग से विचलित नहीं हुए। तुलसी के निडर, स्वाभिमानी, उपकारक, भावुक तथा तत्वज्ञानी पिपासु थे। उनकी रूचि और विश्वास केवल राम पर था, समस्त भौतिक पदार्थ उनके लिए विषतुल्य बन गये थे। वे आकृति से सुन्दर वर्ण से गौर स्वभाव से उदार और प्रवृत्ति से लोक दृष्टा थे।[16]

उपरिलिखित विशेषताओं के साथ–साथ उनमें सहिष्णुता श्रद्वालुता, विनयशीलता, निर्भीकता, गुणग्राहता, आर्दशवादिता, परम्परानुयियता, प्रगतिशीलता, प्रतिभासम्पन्नता तथा मनुष्यता आदि के गुण पाये जाते हैं जो उनके व्यक्तित्वबोधक सामग्री के आवश्यक अंग हैं।

तुलसीदास का व्यक्तित्व महान था। उनकी रूपाकृति और स्वभाव की विशेषताओं का यथात्थ्य और प्रमाणिक उल्लेख मिलता है। हम तुलसीदास के चित्रों की आकृतियों तथा उनकी निजी कृतियों और चरित्र ग्रन्थों के आधार पर उनके व्यक्तित्व का निरूपण करते हैं। तुलसीदास का रंग गोरा था। वे सुंदर और लम्बी भुजाओं वाले थे, जनेऊ और तुलसी की माला धारण करते थे। विभिन्न समसामायिक चित्रों से यह भी सूचित होता है कि वे गोरे नहीं थे, लेकिन प्रौढ़ावस्था में उनका शरीर स्थूल हो गया था।

गौर वरन विद्या निधान! विविधशास्त्र पंडित महान"।[17]

मनोविज्ञान वेत्ता वाह्य पृष्ठभूमि में आन्तरिक पृष्ठभूमि को व्यक्तित्व रचना में अधिक प्रभावी मानते हैं। डा0 जगदीश प्रसाद के शब्दों में– "व्यक्तित्व को समझने में वाह्य साक्ष्य उतना सहायक नहीं होता जितना अन्तः साध्य क्योंकि व्यक्तित्व

यर्थाथत मनुष्य का आन्तरिक रूप है।"[18]

तुलसीदास ने इस भारत भूमि को अपने जन्म से ऐसे समय पर अलंकृत कियाथा, जिस समय यहाँ पर विदेशी यवनों का क्रुर शासन चल रहा था। इस्लाम जो वस्तुतः एवं तत्वतः मोहम्मदीनस्म है, जैसा कि प्रबुद्ध एवं जागरूक पश्चिम मान्यता का है। हिंसा एवं घृणावादी इतिहास सदा ही भयानक रहा है। मोहम्मद एक महान नेता थे, किन्तु उनकी निरक्षरता , उनके उचित –अनुचित सत्तर (या पैसठ) युद्ध उनके अनेक विवादस्पद विवाह इत्यादि अनेक सुल्तानों या अन्य व्यक्तियों में नव धर्मप्रवर्तक पर बनने की योग्यता के आभास के कारण बन गये थे। योग्यता इत्यादि सब गौण हो गये, केवल खड़क ही महत्वपूर्ण बन बैठा। अलाउद्दीन ने नवधर्म प्रवर्तन पर केवल विचार ही किया

था और अकबर ने तो चला ही दिया था। तुलसीदास की महानतर प्रतिभा नवधर्म प्रवर्तन के गौरव लोभ से मुक्त रहकर चिंतन अथवा सनातन भारतीय धर्मसाधना की सेवा में दत्त चित्त रही रही। यह तथ्य उनकी लोभरहित नम्रता एवं प्रशांत निष्ठा से संपन्न व्यक्तित्व का परिचय देता है। युग एवं मानव का अटूट संबंध होता है। तुलसीदास का महान व्यक्तित्व अपने युग से अटूट संबंध रखता है, इनके समय में हिन्दू समाज का ढ़ाँचा लड़खड़ाने लगा था, उन्होंने पूर्ववर्ती सामाजिक स्थितियों को गहराई से देखा, उसका निरीक्षण किया, परिवर्तनवादी नाथो–सिद्धों और निर्गुण सन्तों को यथास्थान पर धिक्कारा। किसी नये परिवर्तन के स्थान पर उन्होंने पुनरूत्थान का प्रयास किया। तुलसीदास ने बड़े प्रेम उदारता से अपने भूले हुए आर्दशों को स्मरण कराने का प्रयास किया और उसमें उन्हें पूरी सफलता मिली। उनके समय में स्वामी–सेवक, पिता–पुत्र, भाई–भाई, राजा–प्रजा, आदि के सम्बन्धों की हार्दिकता समाप्त होने लगी थी। साम्प्रदायिकता र्स्पधा हिन्दू मुसलमान के मध्य जातीय ईर्ष्या कोढ़ में खाज का काम कर रही थी। इस्लाम भारत का राजधर्म था। ऐसे वातावरण में किसी बड़े सामाजिक परिवर्तन की एक तो सम्भावना कम थी, जिसे राजशक्ति का सहारा न प्राप्त हो और दूसरे वह देश के सम्मानित और आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न वर्ग को कभी स्वीकार्य न होता। ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण हिन्दू समाज को लेकर चलना और शासन के रूख का पूरा ध्यान रखना किसी प्रतिभाशाली व्यक्ति के व्यक्तित्व की बुद्धिमत्ता मानी जा सकती है।[19]

मर्यादा तुलसीदास के व्यक्तित्व की ज्योति थी। अस्थायी महत्व के विभाजक स्वर–घोषों से मुक्त होकर वे व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं मानवता के लिए प्रशांत–गहन मर्यादा–पथ प्रशस्त करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने भारत के अतीत में डुबकी लगायी। वेद, पुराण, अनन्य हिन्दू शास्त्रों और समस्त साहित्य का मंथन किया। वहाँ से उन्होंने राम–जैसा प्रजा वत्सल राजा लिया, जो वर्णाश्रम धर्म और लोक–वेद की मर्यादा का संरक्षक था। इस राम में उन्होंने ब्रहम के साथ ही मध्ययुगीन मानव के सभी गुणों को पूँजीभूत कर दिया।इस प्रकार उन्होंने एक आदर्श राज्य, आदर्श समाज और आदर्श लोकधर्म की परिकल्पना की जो प्रतिगामी होते हुए भी तत्कालीन समाज के लिए व्यवहारिक सिद्ध हुआ।[20]

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने दीर्घ जीवन में वृहत साहित्य का लेखन किया। किन्तु उनकी समग्र कृतियों की प्रमाणिकता के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है।

विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने मत इस प्रकार व्यक्त किये हैं। माता प्रसाद गुप्त के अनुसार तुलसी की प्रमाणिक रचनाए बारह हैं।[21] शिव सिंह सरोज के अनुसार अठारह हैं[22] 'नोटस ऑन तुलसी ' के अनुसार इक्कीस हैं।[23] मिश्रबन्धु 'नवरत्न' के अनुसार पच्चीस हैं।[24] अचार्य रामचन्द्र शुक्ल के तुलसीकृत प्रमाणिक रचनाओं की संख्या बारह मानते हैं। काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने तुलसी ग्रन्थों को ग्यारह ही माना है।[25] किन्तु अब तक के अनुसंधान से उपलब्ध जानकारी के अनुसार सर्वसम्मति से तुलसीदास द्वारा रचित 13 रचनाए प्रमाणिक मानी गयी हैं।[26]

1. रामचरित्र मानस
2. विनयपत्रिका
3. कवितावली
4. गीतावली
5. दोहावली
6. श्रीकृष्ण गीतावली
7. जानकी मंगल
8. पार्वती मंगल
9. रामलला नच्छू
10. बरवै रामायण
11. वैराग्य संदीपनी
12. रामाज्ञा–प्रश्न
13. हनुमान–बाहुक

डा0 माता प्रसाद गुप्त एवं रामनरेश त्रिपाठी ने तुलसीदास की रचनाओं का काल–क्रम इस प्रकार दिया है–

1.	रामचरित्रमानस	–	सम्वत 1631 वि
2.	विनयपत्रिका	–	सं0 1680 वि
3.	कवितावली	–	सं0 1615 से 1680 वि0 तक
4.	गीतावली	–	1625 वि
5.	दोहावली	–	सं0 1620 से 1617 वि तक
6.	श्रीकृष्ण गीतावली	–	सं0 1658 वि के आसपास

7.	जानकीमंगल	–	सं0 1643 वि0
8.	पार्वती मंगल	–	सं0 1644 से 1650 तक
9.	रामललानच्छू	–	सं0 1646 वि
10.	वैराग्य रामायण	–	सं0 1689 वि के पूर्व
11.	वैराग्य संदीपनी	–	सं0 1620
12.	रामाज्ञा–प्रश्न	–	सं0 1620 से 1625
13.	हनुमान–वाहुक	–	सं0 1675–80 वि0 के मध्य रचना

तुलसी की इन रचनाओं का मूल विषय ऐतिहासिक–पौराणिक रामकथा है, इन रचनाओं के द्वारा तुलसी ने अपने युग को पौराणिक आर्दशों की छाया–प्रदान की हैं। अपने युग के सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं सभी मानवीय आर्दशों को तुलसीदाास ने राम–कथा के साथ जोड़ दिया है। यही तुलसी का वस्तु तत्व है। इन रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

1. रामचरित्रमानस – यह तुलसीदास का सर्वोत्तम ग्रन्थ है। इसमें सात काण्ड हैं इस ग्रन्थ में राम–जन्म से लेकर लंका–विजय के पश्चात तक रामादि के अयोध्या के लौटने तक रामकथा वर्णित है। इसका आरम्भ काल अन्तः साक्ष्य के आधार पर मंगलवार चैत्र की नवमी तिथि संवत 1631 विक्रमी है। इस ग्रन्थ रचना का मुख्य उद्देश्य रामभक्ति के माध्यम से व्यक्ति, परिवार और समाज के लिए एक ठोस मर्यादा की स्थापना करना है। तुलसी का लोकधर्म मुख्यतः गृहस्थ संहिता धर्म था, जिसमें आचार–विचारों का पूरा समावेश है। इस आचार संहिता में भरत भ्रातत्व के प्रतीक हैं, लक्ष्मण त्याग के प्रतीक हैं।,राम पितृ भक्त हैं, हनुमान सेवक धर्म के , और सुग्रीव मैत्री के सीता पतिवृत्य की साक्षात प्रतिमा है।[27]

इस प्रकार रामचरित्रमानस के विभिन्न पात्र मानव–जीवन की विभिन्न स्थितियों में सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं। इसीलिय यह उत्तर भारतीय हिन्दू जीवन के लिए आज तक एक बड़ा ही प्रभावशाली आचार संहिता (कोड ऑफ कण्डक्ट) बना रहा है। ग्रियर्सन ने रामचरित्रमानस की विशेषताओं को ध्यान में रखकर ही उसे उत्तर भारत का बाइबिल कहा था।[28]

2. विनय पत्रिका – यह एक गीतिकाव्य है इसमें राजकीय दरबार में प्रस्तुत आवेदनों सहित समकालीन शासन व्यवस्था तथा विशेष रूप से न्याय व्यवस्था की जानकारी का प्रमुख स्रोत है। इस कृति में 268 पद्य हैं। इसमें तुलसीदास की कवित्व शक्ति अगाध

–पाण्डित्य, काव्य–कौशल आदि का परिचय मिलता है। डा0 माता–प्रसाद गुप्त की मान्यता है– "विनयपत्रिका" का संसार के आत्म–निवेदन साहित्य में अत्युच्च स्थान है।"[29]

3. कवितावली – इस ग्रंथ में राजनैतिक न्याय व्यवस्था, लंका दहन दूतनीति (हनुमान तथा विभीषण) तथा सामाजिक व्यवस्था में सीता स्वयंवर आदि तत्कालीन स्थितियों की जानकारी प्राप्त होती है। इसमें राष्ट्रीय आपदा जैसे दुभिक्षि, महामारी आदि के प्रकोप तथा राज्य की नीतियों की सूचना मिलती है। इस ग्रन्थ में सात काण्ड हैं।[30]

4. गीतावली – इस ग्रन्थ से तत्कालीन वर्णाश्रम व्यवस्था तथा उसके पालनार्थ राज्य के कर्तव्य के रूप में तपस्वी शूद्र का वध, न्याय व्यवस्था गुप्तचर व्यवस्था, (निषादराज द्वारा भरत को, शूद्र जाति के निषाद से राम मैत्री तथा गुप्तचर पद पर रखना वर्तमान के लिए प्रसांगिक ही नहीं बल्कि प्रेरणा का स्रोत है) तथा मनोरंजन सम्बन्धी कृत्य हिडोला, झूला, झूलना, फाग खेलना आदि सामाजिक गतिविधियों की जानकारी प्राप्त होती है। इस रचना में 7 काण्ड, 328 पद हैं। डा0 रामकुमार वर्मा गीतावली की बाल्मीकि रामायन से प्रभावित मानते हैं। इसमें राम के जन्म से लेकर विवाह तक की कथा का मनोरम वर्णन मिलता है।[31]

5. दोहावली – इस ग्रन्थ में राजनैतिक स्थिति का व्यापक वर्णन प्राप्त होता है जिसमें शासक और उसके कर्तव्य, राज्य एवं प्रजा के साथ सम्बन्ध राज्य की सुख एवं समृद्धि के लिए कार्य, उचित कर प्रणाली आदि है। इसी ग्रंथ में निरंकुश शासक को अत्याचारी बताया गया है और शासक पर धर्म पर अकुंश लगाते हुए उसे धर्माथ प्रजा हितकारी कार्यों का परामर्श दिया गया है। इस तुलसीकृत रचना में ज्ञान की शिक्षा का वर्णन मिलता है। साथ ही प्रेम भक्ति का निरूपण किया गया।[32]

6. श्रीकृष्णगीतावली – यह ग्रंथ ब्रजभाषा में तुलसीदास जी ने लिखा इसमें लेखन कालीन प्रवृत्ति को हमेशा की तरह अलग न रख सके इस ग्रंथ अरबी–फारसी शब्दों का प्रयोग करते हुए मुगलकालीन शासन प्रणाली को समझाया गया है जिसमें यहा भारत कालीन कथानक उद्धरणों का प्रयोग किया है इतिहास की दृष्टि से यह अति महत्वपूर्ण कृति है। इस ग्रन्थ में श्रीकृष्ण से सम्बन्धित ब्रजभाषा में रचित 61 पद हैं। डा0 रामदत्त भारद्वाज के अनुसार यह ग्रन्थ तुलसीदास की ब्रज–यात्रा के समय रचा गया। 68वें पद में भक्त मर्यादा रक्षा का वर्णन हैं जब दुर्योधन की सभा में द्रोपदी का वस्त्र खींचा जा रहा था। उसमें भीष्म पितामह, आचार्य द्रोण जैसे व्यक्ति बैठै हैं।[33]

7. जानकीमंगल – इस ग्रंथ में सामाजिक एवं सांस्कृतिक उत्सवों, परम्पराओं, साज–सज्जा राजकीय वैभव आदि का वर्णन प्राप्त होता है। इस रचना में विश्वामित्र के

साथ राम–लक्ष्मण के मिथिला गमन से लेकर राम–सीता के विवाह तक का वर्णन है।[34]

8. पार्वती मंगल – इस तुलसीकृत में पार्वती के विवाह का वर्णन है। इसमें 142 तुक व 16 छन्द हैं। यह रचना विवाहोत्सव पर गाने के उद्देश्य से लिखी गयी है।[35]

9. रामललानच्छू – यह ग्रंथ सामाजिक उत्सवों में पारस्परिक सौहार्द का विवेचन करता है जिसमें राजा एवं रानियों से अनेक निम्नवर्णीय नाई, तेली, दर्जी, मोची, माली आदि हास–परिहास करते है और दान प्राप्त करते है। इस रचना में राम–विवाह के अवसर पर नखछेद का वर्णन है। इसकी भाषा अवधी–भोजपुरी है। डा0 माताप्रसाद ने इसका रचनाकाल सन् 1665 माना है।[36]

10. वरवै रामायण – इस ग्रंथ में सामाजिक नीतियों को बनाये रखने तथा उनका कबरेता से पालन करने पर प्रकाश डाला गया है इसी सन्दर्भ में लक्ष्मण द्वारा राम के आदेश पर शूर्पणखा नामक राक्षसी (अर्थात समाज को दूषित करने वाली) को दण्डित किया गया। इसमें राम के जीवन की प्रमुख घटनाओं का वर्णन है।[37]

11. वैराग्य–संदीपनी – इस ग्रंथ द्वारा समाज में सन्तों की महिमा का वर्णन करते हुए उनके प्रति स्नेह एवं सम्मान का बोध कराया है तथा समाज को मोक्षरूपी उपनिषदीय ज्ञान का उपदेश दिया। इस रचना में तुलसीदास ने सन्तों के स्वभाव, महिमा तथा शान्ति का वर्णन किया है।[38]

12. रामाज्ञा–प्रश्न – इस में ग्रंथ में भी सामाजिक रीति–रिवाज पुरूष कर्तव्य, नारी धर्म की जानकारी प्राप्त होती है इसमें शकुन–विचार, ज्योतिष के अलावा सीता सती के रूप में महिला आदर्श का प्रेरणा समाज को प्रदान की गयी है। इस कृति में सात सर्ग हैं, प्रत्येक सर्ग में सात दोहे हैं। इन दोहों द्वारा व्यक्ति के भाग्य के विषय में ज्योतिष सम्बन्धी जानकारी मिलती है। रामनरेश त्रिपाठी को रामचरित्रमानस से पूर्व की रचना मानते हैं।[39]

13. हनुमान–बाहुक – इस ग्रंथ में तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों को दर्शाया गया है इसके माध्यम में बानर रूपी हनुमान तन नरशासक श्री राम मित्रता संकट के समय साथ देना, सेवा का भाव आदि विशेषताओं को दर्शाया गया है। इस काव्य ग्रन्थ में हनुमान जी के प्रति तुलसी की प्रार्थना है कि जो बाहु–पीड़ा दूर करने के लिए गयी है।[40]

भक्ति शब्द 'भज सेवायं' धातु से कितना प्रत्यय के योग से बना है, जिसका अर्थ है भगवान की सेवा करना। इस प्रकार भक्ति ईश्वर प्राप्ति का एक मार्ग है जिस पर चलने से भक्त अपने इष्ट का साक्षात्कार कर सकता है।[41] अतः विद्धानों ने भक्ति की अनेक परिभाषाएँ अपने–अपने दृष्टिकोण से इस प्रकार थीं–महर्षि–शाण्डिलय के अनुसार "ईश्वर विषयक परानुरीक्ति ही भक्ति है।" 'श्रीमदभागवत के अनुसार भगवान में हेतु रहित निष्काम, एकनिष्ठ युक्त अनवरत प्रेम का नाम भक्ति है।"स्वामी नारायण तीर्थ भी

पराकाष्ठा पर पहुँची भगवत्प्राप्ति को ही भक्ति की संज्ञा देते हैं।[42]स्वामी विवेकानन्द ने भक्ति के सम्बन्ध में अत्यन्त सूक्ष्म विचार दिया है, उन्होंने कहा है निष्कपट होकर ईश्वर की खोज करना भक्ति है।[43]

आचार्य मधुसूदन सरस्वती भक्ति को मन की एक ऐसी वृत्ति मानते हैं जिसमें भक्त राग से उत्पन्न आननदित होकर भगवदाकार हो जाता है। भक्ति की व्याख्या करते हुए शंकराचार्य कहते हैं कि "परमेश्वर की निरन्तर उत्कण्ठा युक्त स्मृति ही भक्ति है।"[44]आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में "श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है।"

इस प्रकार अपनी–अपनी मान्यताओं के अनुसार विद्वानों ने भक्ति की परिभाषाएँ की है। इनमें शाण्डिलय की परिभाषा बहुमान्य है। यद्यपि स्वामी विवेकानन्द तथा डा0 युगेश्वर प्रभूति विद्धानों ने इस परिभाषा को अपूर्ण कहा है। तथापि शाण्डिलय के लघुसूत्र में भक्ति की सभी मान्यताओं अर्न्तनिहित एवं गतार्थ हो जाने से इसकी उत्तमता की उपेक्षा नहीं की जा सकती है।[45]

तुलसीदास की भक्ति–पद्वति सेवक–सेव्य भाव की दास्यभक्ति है। इसीलिए चिन्तन के क्षेत्र में ब्रहम और जीव को अभेद मानते हुए भी उन्होंने भक्ति के लिए व्यवहारिक दृष्टि से जीव और ब्रहम में भेद माना है। इस भेद–भावना से भक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। इसीलिए तुलसी ने राम को स्वामी और भक्त को सेवक माना है। तुलसी ने अपनी इस मान्यता का उल्लेख इस प्रकार किया है –

'सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तीरय उरगरि'[46]

दास्य भाव की भक्ति में दाम्पत्य, सख्य आदि भावों की तरह कभी फिसलने तथा पथभ्रष्ट होने का अवकाश नहीं रहता। इसीलिए तुलसी ने दास्य भाव को ही भक्ति का सच्चा स्वरूप माना है। रामचरित्रमानस में शरभंग, सुतीक्ष्ण, शबरी, दास्य भक्ति के उदाहरण हैं।

तुलसीदास मूलतः भक्त कवित थे। अतः उनके काव्य में सर्वत्र भक्ति की प्रधानता है। उन्होंने काव्य के लिए रचना नहीं की। कविता करना उनका मुख्य उद्देश्य नहीं था, अपितु भक्ति के संदेश को जन–जन तक पहुँचाने के लिए ही उन्होंने काव्य–रचना की थी। जिस प्रकार पुराणकारों ने गाथाओं के माध्यम से आध्यात्मिक चिन्तन को रोचकता प्रदान की है, उसी प्रकार तुलसी ने अपने और दर्शन समन्वित भक्ति के काव्य के माध्यम से अत्यन्त सफलतापूर्वक अभिव्यक्ति प्रदान की है। तुलसी की भक्ति

पूर्णतः शास्त्रानुमोदित और परम्परानुसारी है। वह एक और तो नाना पुराणनिगमा सम्मत है और दूसरी ओर पूर्ववर्ती आचार्यों की परम्परागत मान्यताओं और वैष्णव धर्म के लक्षणों के अनुरूप है। इसमें अन्तः साध्य अर्थात दार्शनिक तत्व वेदों और उपनिषदों के द्वारा लिया है। सदाचारी आदर्श नायक की प्रेरणा रामायण और महाभारत जैसे ऐतिहासिक ग्रन्थों से ली गयी है और भक्ति को भाव एवं रस के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।

इस प्रकार तुलसी की भक्ति में अपने से पूर्ववर्ती प्रायः सभी मुलभूत तत्वों एवं सिद्धान्तों का समाहार हो गया है। तुलसी साहित्य में भक्ति का रूप बड़ा सम्यक है। श्रीमद भगवदगीता में श्री कृष्ण की ये यथा माँ प्रधन्तेतांस्तथैव भजाम्हा।" उक्ति को चरितार्थ करते हुए उन्होंने सभी संसारिक नातों को भक्ति का आधार बनाया है। दशरथ और कौशल्या की भक्ति वात्सल्य भाव से विभीषण,सुग्रीव, भ्रातृभाव से हनुमान की भक्ति सेवक भाव से, अयोध्यावासियों की भक्ति राजा भाव से , रावण की भक्ति शत्रु भाव से वर्णित की गई है। लक्ष्मण और शबरी को भक्ति का उपदेश देते हुए राम ने अयोध्या रामायण और श्रीमदभागवत में प्रतिष्ठित नवधा भक्ति के श्रवण, कीर्तन स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन आदि नौ साधनों का प्रतिष्ठित किया है। परन्तु इन सभी साधनों को स्वीकृति देते हुए तुलसी दास्य भाव की भक्ति पर बल देते हैं।

श्री रामचरित्रमानस में सरभंग, सुतीक्षण, शबरी दास्य भक्ति के उदाहरण हैं।

तुलसी आदर्श भक्त हैं। वे अपने आराध्य राम के प्रति दास्य भाव की भक्ति रखते हुए पूर्ण प्रेम और विश्वास के साथ आत्मसर्मपण करते हैं। विनय पत्रिका में उनकी दास्य भाव की भक्ति का उदाहरण मिलता है–

"तु दयालू दीन हौ तू दानि हौ भिखारी।
हौ प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुंज हारी।।
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मौसो।
मो समां आरत नाहिं आरतिहर तोसो।।[47]

रामचरित्रमानस में तुलसी की अन्यय भक्ति का उदाहरण मिलता है जो इस प्रकार है –

राम सुस्वामि कुसेवक मौसो, निज नयन देखौ दयानिधि पाँसो।।[48]

उनकी सदा यही कामना रहती है कि उनकी आत्मा सदा राम की भक्ति में लगी रहें–

"नान्या स्पृहां रघुपते हृदयेऽस्मदीये।
सत्य वदामि च अवान खिलान्तरात्मां
भक्ति प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरा में,
कामादिदोषरहितं कुरू मानस च।।[49]

तुलसी की भक्ति की सभी साधनाओं और भावनाओं से ऊपर उठकर प्रतिष्ठित है। उन्होंने अपने साहित्य में सर्वत्र भक्ति की श्रेष्ठता स्वीकार की है। इसीलिए उन्होंने राम की भक्ति के प्रति अपनी एक निष्ठा व्यक्त की है और इसीलिए राम की भाक्ति को सब साधनों का सुन्दर फल माना है। डा0 रामकुमार वर्मा के अनुसार "तुलसी ने भक्ति को जीवन के मानसिक रोगों की अमोघ औषधि मानकर उसका व्यवहारिक एवं सुगम रूप उपस्थित किया है।"[50] तुलसी की भक्ति लोकमंगलकारी है, वे अपने अराध्य राम के चरित्र एवं लीला के गान के द्वारा संसार में आदर्श चरित्र, आदर्श समाज, आदर्श साहित्य और आदर्श राज्य की स्थापना करना चाहते हैं। संसार के प्रत्येक प्राणी को मानवता की पराकाष्ठा पर पहुँचाना उनका स्वपन था। अतः उनकी भक्ति में वे सभी आदर्श सूत्र में मोतियों को पिरोये हुए हैं, जो मानवता को उत्थान की ओर ले जाते हैं और मानव मात्र का कल्याण करने वाले होते हैं। उनका काव्य जीवन का निर्माण करने की प्रेरणा देने वाले उन आदर्शों से युक्त है, जिनकी नींव में नैतिकता है। उनके पात्र दैवीयगुण सम्वत–सम्पन्न है और उन नैतिक सिद्धान्तों का पालन करने वाले हैं, जो मनुष्य की अंतवृत्तियों का उत्कर्ष कराने के साथ–साथ सार्वभौमिक मानवता का कल्याण करने वाले होते हैं। तुलसी के अनुसार नैतिकता की कसौटी है– परहित एवं त्याग। इन्हीं स्वान्तः सुख मिलता है और इन्हीं से हृदय के तम का उपशमन होता है। उनका "जो मन भज्यो चहे हरि सुरतरू" इस बात का प्रमाण है कि उनकी भक्ति नीति–सम्बन्धी सिद्धान्तों से युक्त थी। स्पष्ट है कि उनकी भक्ति सामाजिक धरातल पर अवस्थित है। भक्त के जीवन, व्यवहारों, संस्कारों और कार्यों के माध्यम से समाज उनकी इस प्रकार तुलसी की भक्ति उनकी वैयक्तिक साधना मात्र नहीं है, अपितु समाज के प्रत्येक वर्ण और वर्ग के पूर्ण विकास को आधार बनाकर चलने वाला जीवन दर्शन भी है। तुलसीदास ने अपने काव्य में कलयुग का वर्णन करके तत्कालीन समाज की दयनीय अवस्था का वर्णन किया है। लोक–जीवन अत्यन्त दयनीय अवस्था में था और " प्रकृति सहज वासनाओं का दास बना हुआ मानव प्रकृति के अर्थात आध्यात्मिक और नैतिक

अंगों की अवहेलना करके पशुता के स्तर तक पहुँचा हुआ अहितकारी परिणामों को भोग रहा था। इसी के उन्नयन के लिए उन्होंने मानस के पात्रों का आदर्श जनता के सामने रखकर आदर्श परिवार, आदर्श समाज, और आदर्श राज्य का सुन्दर निदर्शन प्रस्तुत किया उनकी भक्ति में जहाँ एक ओर व्यक्तिगत साधना द्वारा आत्मकल्याण होता है वहीं दूसरी ओर लोकसाधना द्वारा लोककल्याण भी होता है। प्रिय है जैसा चातक को लोक सुखदायी मेघ का रूप। इस प्रकार तुलसीदास की भक्ति व्यक्तिनिष्ठ होने के साथ–साथ समाष्टि निष्ठ भी है। मध्यकालीन भारतीय इतिहास में तुलसीदास जी के समकालीन अन्य महान सन्तों ने अपनी विद्वत्ता से समाज को प्रभावित किया तथा अनेक पन्थो सम्प्रदायों का निर्माण किया गया। उनमें तुलसीदास जी ने मध्यकालीन भारतीय समाज जो तत्कालीन मुस्लिम शासकों की उपेक्षाओं का शिकार हो रहा था, में प्राचीन भारतीय चरित्रों आदर्शों तथा परम्पराओं के माध्यम से नवीनता लाने में सफलता प्राप्त की। इसी सन्दर्भ में उनके द्वारा रचित रामचरित्रमानस प्रत्येक मनुष्य तथा परिवार का प्रतिष्ठित पूज्यनीय ग्रन्थ घर–घर में पहुँच गया। तुलसी तथा समकालीन विद्वानों का सामंजस्य निम्नलिखित है।

सूरदास और तुलसीः–

भक्तशिरोमणि महाकवि सूरदास पन्द्रहवी–सोलहवीं शताब्दी की अद्‌भुत देने है। जहाँ उस युग की परिस्थितियों ने सूर की धर्म साधना एवं काव्य जगत् को प्रभावित किया है। वहाँ अपनी भक्तिसाधना, काव्यप्रतिभा एवं शक्तिशाली व्यक्तित्व से उन्होने अपने युग के निर्माण में योगदान दिया। सुरदास केवल युगदृष्टा ही नही युगस्रष्टा भी थे। वैसे तो प्रायः प्रत्येक कवि को मुख्यता अपने अन्तःकरण से ही काव्यरचना की प्रेरण मिलती है, फिर भी उसका अन्तःकरण सर्वथा स्वतन्त्र एवं अन्यीनरोपक्ष नही होता। उसके अन्तः करण में जिन भावों या विचारधाराओं का स्फुरण होता है। उनके निर्माण में समसामयिक राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितिया भी पर्याप्त योग देती है। कवि की कृतियों पर यहाँ एक और उसके अन्तर्जगत उसकी वैयक्तिक विशेषताओं की छाप अंकित रहती है, वहीं दूसरी और उसके युग की विविध प्रतिभाशाली कवि अपने युग से प्रभावित होता है और साथ ही वह अपने युग के निर्माण या परिष्कार में योग देता है।

सूरदास एकान्त साधनानिरत कृष्ण भक्त थे। अपने आशहथ की भक्ति में लीन होकर उन्होनें अपनी व्यक्तिगत भावनाओं एवं अनुभुतियों को ही अपने काव्य में अभिव्यक्ति प्रदान की है। सूरदास का काव्य अपने युग धर्म के प्रभाव से सर्वथा मुक्त नही कहा जा सकता। सूरदास के समय में दिल्ली साम्राज्य में उनके मुस्लिम शासकों ने सिहांसन पर अधिकार करके अपनी शासन व्यवस्थर चलाई। सुरदास के जीवन के एक सौ वर्ष से ऊपर के इस काल में इब्राहीम लौदी, शेरशाह सूरी, हुमायुं, अकबर, आदि बादशाहों ने दिल्ली पर अधिकार जमाया। किन्तु सामान्तया मुगलबादशाह का शासन

काल हिन्दुओं के लिए पराभव, अत्याचार, विलासिता और अराजकता का समय ही सिद्ध हुआ। उस काल में अनेक राजपुत राजाओं ने अपना क्षत्रियोचित्त आत्मसम्मान एवं वीरता खो दी थी। मुसलमान बादशाहों के जीवन का अनुसरण करते हुए हिन्दू राजा भी विलासिता के जीवन को अपनाने लगे थे। उनके व्यक्तिगत जीवन में अनेक दूषित प्रवृत्तियों को प्रश्रय मिलने लगा था। आत्मगौरव, प्रजा–प्रेम और धर्मनिष्ट जैसे उदात्त गुणों का उनके चरित्र में प्रायः अभाव ही दिखाई देने लगा था।

समाज में जांतिगत भेद–भाव, ईर्ष्या–देष और अन्धविश्वास की भावना बढती जा रही थी। कृषकों की भी दशा अच्छी नहीं थी। शासक वर्ग के लगान वसूल करने वाले कर्मचारी प्रजा के साथ अत्याचार करते और कृषकों की आवश्यकताओं की उपेक्षा करके बलपूर्वक लगान वसूल कर लेते थे।[51] वे चोर किसान लगान के भार से परेशान रहते और कभी–कभी दुर्मिक्ष, आनावृष्टि के कारण अन्न के अभाव में और अधिक दुखमय जीवन बिताते थे।तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों का सूरदास पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा था। उन्होने अपने समय के विभिन्न मत–मतान्तरों के गुण–दोषों से परिचित हो कर अपनी धर्मसाधन का स्वरूप निश्चित किया। निर्गुणिए संतो का निर्गुण ब्रहम जनसाधारण की पहुँच से बाहर की वस्तु सिद्ध हुई थी। सूर ने जहाँ जनता को निर्गुण–सम्प्रदाय की उपासना के बुरे प्रभाव से बचाने की चेष्टा की है, वही साथ ही उन्होने जनसाधारण को सूफियों की सहस्यमुलक प्रेमी–पासना के मोह से भी सावधान किया।

सूरदास के योगदान के सम्बन्ध में डॉ हरवशलाल ने लिखा है–''हमारे चरित्र नायक भक्तप्रवर सूरदास इस भक्ति आन्दोलन के अपार–पारावर डवती–उतरती जनसाधारण की नौका के कर्णधार कहे जा सकते है, जिन्होने मत–मतात्तरो के झंझावत से डगमगाती हुई उस साधना–तरिण को प्रेमाभकित के पतवारों में वृजलोक के सुरम्य तट पर लाकर खड़ा कर दिया। संसार के सकीर्ण वातावरण में लडपते हुए मानव को उन्होने उस उच्च भाव–भूमि पर लाकर बिठा दिया, जहाँ एक और तो वह ऐहिकता की कलूषित दुर्गन्ध से मुक्त होकर ईर्श्या–देूष, छल, कपट आदि से रहित उन्मुक्त वायु में साँस ले सका और दूसरी और सांसरिक संताप से तृप्त अनुष्य की दशा पर आंसू बहाता हुआ हाथ बढाकर उसे ऊपर उठाने में सहारा दे सका। जनता की कलुषित नोवृतित्तयों का परिष्कार कर उन्हे ब्रहम्य कृष्ण की उन्मुख करके सूर ने लोककल्याण का बड़ा भारी कार्य किया।''[52]

किन्तु सूरदास की कृतियों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे अपने समय की राजनीतिक एंव सामाजिक परिस्थितियों के प्रति वे इतने जागरूक न थे जितने की जनजीवन के प्रतिनिधि महाकवि तुलसीदास रहे है। इसीलिए सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों का जैसा चित्र तुलसी के काव्य में अंकित हुआ है वैसा सूर की कृतियों में नही हो सका है।

कबीर और तुलसीः– मध्यकालीन धर्म सुधारको में कबीर का भी महत्तवपूर्ण स्थान है, इन्होंने अपने अमूल्य कृतित्व द्वारा साहित्य–भण्डार को परिपूर्ण किया। विचारो से उदार–व्यक्तित्व से अक्खड़ और निर्भीक, काव्योद्वश्येय में लोक कल्याण में परिचालित और वैयक्तिक स्तर का पर समाज–स्थिति की और उन्मुख हुआ। इसके लिए उन्होने खण्डन + मण्डन की नाथ सिद्ध वाली और आत्म सुधार की प्रणाली को अपनाया। उनका समस्त ब्राहयाडम्बर विरोध और व्यंगोक्तिाया इसी की साक्षी है। उन्होने हिन्दुओ तथा मुसलमानों की आलोचना करके पहले साम्प्रदायिक एकता का सफल प्रयत्न किया। भारतीय सांस्कृति पर कबीर के जीवन और व्यक्तित्व का प्रभाव आज तक है।

किन्तु तुलसी और कबीर के द्वष्टिकोणों में पर्याप्त अन्तर था। तुलसीदास सुगण लीलावपुधारी रामचन्द्र के उपासक थे, तो कबीर निर्गुण ब्रहम के। तुलसी के दर्शन पर अद्वैतवादी एवं विशिष्ट अद्वैतवाही दर्शन की गहरी छाया है तो कबीर का दर्शन पर एकेश्वर वादी की दर्शन की गहरी अमिट छाप है। तुलसी के ऊपर वेद–वेदान्त पुराण उपनिषद, वाल्मीकि, व्यास, भवभूति, कालिदास का प्रभाव पड़ा है। तो कबीर के ऊपर लोकजीवन सिद्धो एवं गोरखयंपथियों का। तुलसी भक्ति में विश्वास करते है तो कवीर योग–साधन को मानते हैं। तुलसी साहित्य मे जो कुछ है सव स्पष्ट है उनकी रचना पारदर्शी गंगाजल की तरह हैं तो कबीर की रचना में अधिकांश स्थलो पर रहस्यावादी प्रवृत्तियाँ लक्षित होती है। पार्थक्य की इतनी उभरी रेखाओं के अतिरिक्त तुलसी और कबीर के पदो में साम्य की रेखाओं में भी अन्तर है। तुलसी अपना सर्वस्व राम के चरणों में न्यौछावर कर देते है। वही कवीर निर्गुणवादी (राम) पर अर्षित कर देना चाहते है। तुलसी की द्वष्टि में देह और गेह ऐसे है जैसे धन से दामिनी कौध कर जाती है। सारे नाते, सारे सम्बनध झुठे है। कबीर भी इस बात का समर्थन करते हैं।

किन्तु निर्गुण धारा के महाकवि कबीर ने समाज में निम्न जातियों ब्राहय आडम्बर आदि का विरोध तो किया, परन्तु वैदिक धर्म को उन्होने काफी आधात

पहुँचाया। ऐसी परिस्थितियों में तुलसी दास ने समाज का पथ–प्रदर्शन किया। समाज की आवश्यकता को समझा और मर्यादा पुरषोत्तम राम का आदर्श लोंगो के समक्ष रखा। कबीर के सिद्धान्त ह्रदय सरोवर है अविनासी तथा पाहन पूँज हरि मिलै तो मै पूजूं पहार के उत्तर में तुलसीदास ने कहा है।

अतंरजामिहु ते बड़ बाहर जामि है,राम जे नाम लिए ते।
धावत धेनु पन्हाई लाबाई ज्यो बालक, वो लीन कान किएते।
आपनि बुझि कहे तुलसी, कहिबे न बाबरि बाति दिये।
ते पेज पर प्रहलादहु को प्रगटे प्रन्मु पाहन ले, न हिये ते।[53]

अतः तुलसीदास भारतीय संस्कृति के अनन्य भक्त थे। उन्होने असाधारण प्रतिभा द्वारा लोगो का पथ प्रदर्शन किया। और सांस्कृतिक रूप से छिन्न–भिन्न होते भारतवासियों को एक सूत्र में वाँधा। इस प्रकार निःसन्देह तुलसीदास मध्यकाल के कवियों में सर्वोपरि हैं।

तुलसी और मीराः–

मध्यकालीन भक्त कवि मीरा भी तुलसीदास के समकालीन थी।[54] मीरा कृष्ण भक्ति शाखा की कवियत्री है। मध्यकालीन कृष्ण भक्ति के प्रत्येक स्वरूप उस प्रेम दीवानी के पदों में प्रतिबिम्बित है।[55] कृष्ण भक्तों की दृष्टि भगवान की सौदर्य–विभूति और लोकरंजन पर केन्द्रित रही। उन्होने समाज की तरफ कम ध्यान दिया। राधा–कृष्ण की युगल–उपासना, रासलीला, नित्यविहार आदि पर अधिक बल दिया। उनकी दृष्टि लोक समाज–कल्याण और धर्म सौदर्य के प्रांत तक नही पहुँच सकी। वे भगवान के लोकसंग्रहकारी रूप का प्रकाश करके ज्ञान–वैराग्य–समन्बित भक्ति का साक्षात्कार नहीं करा सके। लोकप्रिया श्रंगारिक वर्णनों और रासलीलाओं के प्रभाव से समाज में भी 'कन्हैया' उत्पन्न होने लगे। ''असंरूकृत ह्रदयों में जाकर कृष्ण की श्रृंगारिक भावना में विलास–प्रियता का रूप धारण किया और समाज केवल नाच–कुदकर ही आनन्द लेने के योग्य हुआ।

मीरा केवल कृष्ण की अराधिका ही रही, समाज से वे अनभिज्ञ थीं, तत्कालीन तभी तो इतिहासकार उनकी भक्ति को रेदास से प्रेरित बतलाते हैं। तभी तुलसीदास ने उसे " जाके प्रियतम राम बदैही" पाति लिखकर भेजी बताते हैं।[56] समाज की आवश्यकता को उन्होने नहीं पहचाना। उस समय सत्य के बदले मिध्या और पाखंड का राज्य था,

अहिसाँ के बदले हिंसा पर ही राजा और प्रजा दोनों की प्रीति थी। जनसाधारण की कौन कहे, शासक तक भूमिचार और चोरो के सरदार हो गए थी। लोक मार्यादा का उल्लघन वेद शास्त्र की निन्दा सामाजिक व्यवस्था का पूर्ण रूप से हास हो चुका था। से सब वाते ऐसी थी जिनको देखकर तुलसीदास की अंतर आत्मा बहुत व्यथित हुई। तत्कालीन समाज को नीवी–बंहान मोचक। कृष्ण की नहीं अपितु 'दीनबन्धु प्रनतारित मोचन'' राम की आवश्यकता थी।[57]

अतः तुलसीदास ने मर्यादा पुरषोत्तम और लोकधर्म संस्थापक राम का राजनकारी चित्र अंकित करके सामाजिक उत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त किया।

दादूदयाल :–

मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन में दादूदयाल की भी महत्तवपूर्ण देन है। दादू ने अपने उपदेशों में प्रेम, एकता, भ्रातभाव, और सहिष्णुता पर जोर दिया। उसका कहना था हिन्दू और तुर्क में, अल्लाह और राम में कोई अन्तर नहीं दिखाई देता है। दादूदयाल को मूर्ति पूजा अवतारवाद, धर्म का बाहरी आडम्बर और उस समय की कुप्रथाओं से गहरा असन्तोष था। इनके विचारों को दादूदयाल– रॉदूआ कहते हैं। इनका पंथ दादूपंथ के रूप में राजस्थान में प्रचलित है।[58]

किन्तु दादुदयाल तुलसीदास के समान अपने असन्तोष को जनता के समक्ष व्यक्त नहीं कर सके। अतः तुलसीदास ने समाज की आन्तरिक पीड़ा को ब्राहय रूप देकर तत्कालीन समाज के समक्ष प्रस्तुत किया यही तुलसी की सवसे बड़ी महानता है।

गुरूनानक :

सोलहवी शताब्दी के भक्ति आन्दोलन के इतिहास में गुरू नानक का महत्तवपूर्ण स्थान है। गुरू नानक का कहना था कि ईश्वर एक है। वह निगुर्ण और निराकार है। उन्होने उस समय मुस्लिम समाज को भी यह सलाह दी कि'' दया को मस्जिद' बनाओं। गुरू नानक ने मध्य मार्ग का प्रचार किया। उनका कहना था। कि जाति और वर्ण भेदभाव व्यर्थ है, क्योंकि सब लोग एक जैसा पैदा होते है। गुरू नानक का विश्वास न वेदों में था न कुरान में। वे ब्राहम्णों और मुल्लाओं के विरोधी थे। वे कर्म के सिद्धान्त और जीवात्मा के आवागमन में विश्वास रखते थे। डॉ ए0सी0 बनर्जी ने

लिखा है कि गुरू नानक का जीवन बड़ा सादा और प्रेम से भरा हुआ था। आज भी लोग उसे ''गुरू नानक शाह फकीर हिन्दू गुरू मुसलामान का पीर कह कर याद करते है।[59]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि नानक ने तुलसी के समान समाज को अपनी तरफ उन्मुख नही किया और नही परम्परागत आदर्श मूल्यों के प्रति कोई नवीन संदेश नही दिया। इस प्रकार तुलसीदास एक उच्च कोटि के कवि तथा भक्त थे।

मलूकदास :–

मध्यकालीन भक्त कवियों में मलूकदास भी तुलसीदास के समकालीन थे। मलूकदास का मत था कि सच्चा धर्म विश्वास पर आधारित होता है। संसार अस्थिर है और क्षणभंगुर है। मलूकदास ने इस तथ्य पर जोर दिया कि हिन्दू और मुसलमान एक है और उनमें कोई अन्तर नहीं है। मलूकदास के विचार में रहीम और राम ही ईश्वर के दो नाम है। किन्तु हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि मलूकदास ने तुलसीदास के समान समाज की गहन गहराईयों का अध्ययन नहीं किया था। वे समाज को वैदिक धर्म की और उन्मुख न कर सके।[60]

तुलसीदास के समकालीन मलूकदास का भी महत्तवपूर्ण स्थान है। मलूकदास ने तीर्थयात्राओं, मूर्ति पूजा, बाह्य आडम्बरों आदि की कड़ी आलोचना की थी। इनका मत था कि संसार क्षणभंगुर है, शरीर नश्वर है। किन्तु मलूकदास भी समाज की उन गहराइयों में उतरे हुए नहीं थे जिस प्रकार उस तत्कालीन समाज की अगाध गहराई में तुलसीदास ने गोता लगाया था। तुलसीदास ने समाज की कूव्यवस्था वेद मार्ग का कुचलन आदि को देखकर हिन्दु समाज की दुदर्शा पर भयंकर रोष व्यक्त किया था। इस प्रकार तुलसीदास एक लोक दर्शी तथा क्रांतिकारी कवि थे।

इन समस्त भक्त कवियों के अलावा तुलसीदास के समकालीन भक्त सुन्दरदास, रामदास, बीरभान, शंकरदेव, ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम, रामदास, वहिनावाई, चण्डीदास आदास नाभादास आदि। इस युग के प्रतिनिधि भक्त कवि थे जिन्होने विचारधाराओं सम्प्रदायों तथा साहित्यिक समाजिक, एवं राजनैतिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर तत्कालीन समाज को जाग्रत किया था। लेकिन मुख्यतः ये कवि अपने आराध्य के प्रति ही श्रृद्धामय रहे, समाज को तुलसीदास के समान योगदान नगण्य था।

भक्ति आन्दोलन के इतिहास में आकवारक्तों का भी प्रमुख योगदान है

अलवार भक्तो में पोयरौ अलवार, भूततालवार, पेयालवार, तिसमलासई, नम्भालावर, मधुरकिव अलवार, कुलशेखर, पेरिथालवार, आडाल पोड़ह अलवार, त्रिरूपाण, मंगोई आदि।[61]

आलवार दक्षिण के विभिन्न राज्यों के निवासी थे। इन्होने तत्कालीन समाज में जो आदर पाया वह भक्ति के माध्यम से तथा जाँति पाँति को चुनौति देने में प्राप्त विजय से था। वैष्णव भक्ति को आधुनिक रूप प्रदान करने में आलावारों का महत्तवपूर्ण योग है। ये आलवार सन्त भक्ति में लीन रहकर समाय से अछुते रहे। इन्होने केवल भक्ति को ही माध्यम बनाकर (राधा कृष्ण) विष्णु के प्रति आराध्य रहें।

इस प्रकार इन आलवार सत्तों का योगदान भक्ति का माध्यम ही बन कर रह गया लमाज में कोई अपनी अनूडी छाप नहीं छोड सके।

तुलसी की भारतीय समाज को देन :– मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समाज का अभिन्न अंग है, उसका अस्तित्व समाज से निरपेक्ष नहीं है। वैयक्तिक अनुभवों के साथ ही सामाजिक वातावरण के प्रभावों की छाप भी उसके हृदय पटल पर पडती है। साहित्य जिसे मानव जीवन की आलोचना के रूप में मान्यता दी जाती है वह सामाजिक आक्रोश की अभिव्यक्ति में सशक्त योग देता हे। इसलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। सामाजिक परिस्थितियों से असंतृप्त रहकर रचना करना साहित्यकार के लिए संभव नहीं है। तुलसीदास लोकदर्शी कवि थे। उन्होंने सामान्य जन–जीचन को निकट से देखा था। द्ररिदता और दैन्य की आग में तपकर अपने व्यक्तित्व को निखारा था। जनता की कुण्ठाओं को ओढ़कर उसे अपनी पीडा बनाकर प्रस्तुत करना सीखा था। जिल्ले इलाही की उपाधियों से सुशोभित वासनाओं में लिप्स शासकों के प्रति उनके मन में कोई आदर भाव नहीं था। वे उनकी खुदाई स्वीकार करते के पक्ष में नहीं थे।

तुलसीदास के समकालीन सम्राट थे–अकबर और जहॉगीर। दोनों ही विलासी शासक थे। सम्राट अकबर का युग इतिहासकारों की दृष्टि में हिन्दू मुस्लिम एकता और शान्ति का युग है। किन्तु उत्तरी भारत की हिन्दू जाति विदेशी शासन से संतुष्ट रही हो तो इसमें पर्याप्त सन्देह है। अकबर के तमाम प्रयास भी हिन्दू का जन सामान्य के आँसू पोंछने के लिए कदाचित पर्याप्त न थे। सत्य की तीव्र इच्छा ने अकबर को (दीने इलाही चलाने के लिए प्रेरित धार्मिक स्वर दब कर रह गया। मीना बाजार की सजावट के सामने

दीने इलाही की सज्जा फीकी पड गयी। उसके हरम में पाँच हजार चंद्रमुखियो का जमघट था। राजपूत घरो में विवाह करके जजिया और तीर्थ यात्रा कर को हिन्दूओं से न लिये जाने का आदेश देकर अकबर ने एक ओर दूसरी ओर उनके लिए विलासप्रियता की भरपूर सामग्री जुटा थी जिससे वे उसी मे ंखोये रह सके। जहाँगीर के हरम में हिन्दू नारियाँ भरी पडी थीं। इससे स्पष्ट है कि महाराजाओं की ऐसी स्थिति हो तो सामान्य जनता की दुर्दशा का अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है।

वर्णाश्रम–व्यवस्था और सामाजिक मर्यादा भंग हो चुकी थी। दम्भियों ने अपनी बुद्वि से अनेक नए–नए पन्थ स्थापित कर लिए थे। वर्णाश्रम व्यवस्था का नाश हो चुका था कर्म और उपासना का स्थान कुवासनाओं ने लिया था, ब्राहम्मण वेदों को बेचने वाले हो गये थे जिसको जो मार्ग अच्छा लगता था उसी को अपनाता था, निम्न वर्ग के लोग सिर मुडवाकर सत्यपि हो गये तथा प्रवचन करने लगे थे इस प्रकार तुलसी युगीन हिन्दू समाज के आन्तरिक संगठन में ऐसी कुरीतियाँ घर कर गयी थीं कि सारा कलेवर ही जर्जरित हो गया था। इस प्रकार तुलसीदास ने समन्वयवादी दृष्टिकोण का प्रचार करके हिन्दू समाज के विभिन्न वर्गो में प्रचलित, धार्मिक साम्प्रदायिक, आध्यात्मिक, साधनात्मक, दार्शनिक आदि दृष्टियो से समन्वय किया तथा उन्हे धार्मिक सामाजिक तथा राष्ट्रीय दृष्टि से संगठित किया। सांस्कृतिक दृष्टि से तुलसी सी यह देन अत्यन्त महत्वपूर्ण थी।

अतः तुलसीदास ने कलिकाल के प्रतीक को लेकर अपने युगीन समाज की इकाईयों की तनोन्मुखता का विस्तृत चित्रण किया। इसके साथ ही सतयुग के प्रतीकों द्वारा अपने सामाजिक आदेशो का प्रतिफल कराया था। वे इस देश के समाज को श्रुति सम्मत देखना चाहते थे। उनकी राम राज्य की कल्पना और पराधीन होने का कष्ट हिन्दू राज्य की प्रतिष्ठा और विदेशी राज्य को समाप्त करने का उनका ध्येय था। तुलसी का काव्य भारतीय संस्कृति की मूल भूत एकता की पुष्टि करता है। मध्ययुगीन भारतीय इतिहास तुलसी के अध्ययन के बिना अधूरा हैं दरवारी आँखें ऐतिहासिक घटनाओं का संकेत मात्र कर सकती है। इतिहास की सामाजिक और सास्कृति पूँजी तो स्वतंत्र रूप से लिखी गयी साहित्यक रचनओं में रचनाकारो में सुरक्षित है तुलसी का काव्य अपने युग का एक सांकृतिक दस्तावेज है। इतिहास के विद्यार्थी के लिए तुलसी के साहित्य में प्रचुर सामग्री है। तुलसी को आज नये सन्दर्भो में पढने की आवश्यकता है। उनका काव्य

किसी की विशेष की नहीं सम्पूर्ण राष्ट्र की बहुमूल्य निधि है। तुलसी के सम्बन्ध में डा0 सुनीति कुमार चटर्जी के ये शब्द सर्वथा समुचित प्रतीत होने है कि ''वैदिक युग के पूर्व काल से युग धर्म के नअुसार परिवर्तित होते हुए जो वहुमुख और बहुरूप हिन्दू धर्म सनातन धर्म के नाम से आज तक चला आया है उसकी गति को अपने स्वभाविक विकास की अनुयायिनी रखने के लिए जिन मनीषियों ने प्रयत्न किया था तुलसीदास उन प्रमुखो में से एक थे। नामदास ने भी भक्तमाल में लिखा है–

''कलि–कलुष नाशन के लिए बाल्मीकि तुलसी भयो''।[62]

इस प्रकार तुलसी आदर्श रामराज्य की कल्पना कर तथा राम का आदर्श प्रस्तुत करके भारतीय समाज को एक सन्देश दिया। तुलसी की लेखनी से जिस परिवार समाज और राष्ट्र के चित्र चित्रित किये गये है। उनमें स्वच्छता, पवित्रता, सुन्दरता और दिव्य आकर्षण है। आज 400 वर्ष के बाद तुलसी की रामराज्य कल्पना हमे प्रेरणा और सुख शान्ति प्रदान करती है। आज यदि उसे आदेश मानकर लक्ष्य प्राप्ति के लिए अग्रसर हो तो हमारे परिवारों समाज और देश का कल्याण हो सकता है। अतः तुलसीदास की भारतीय समाज को देन, सामाजिक राजनैतिक आध्यात्मिक, साहित्यक और कला के क्षेत्र में विशिष्ट दिखाई देती है।

राजनैतिक क्षेत्र में :– तुलसीदास ने मुसलमान शासको के अनाचारों और दण्डों की आलोचना करते हुए उन्हे उत्कृष्ट राजधर्म को अपनाने की प्रेरणा दी। रावण–राज्य के प्रतीक से उन्होने अत्याचारी शासन की और रामराज्य का आदर्श प्रस्तुत किया। तुलसी का रामराज्य तो ही है। स्वराज्य भी है। उसका प्रभाव सवजन तक पहॅचाने वाला है। सभी त्रितापों से आछूता था–

देहिक दैविक भौतिक तापा, रामराज नहि कायुहि व्यापा''

समस्त अयोध्यावासी सुन्दर एवं स्वस्थ थे, कही भी कोई दारिद्र दुःखी व दीन दिखाई नहीं देता। समस्त अयोध्यावासी सुंदर एवं स्वस्थ थे, कहीं भी कोई दरिद्र, दुःखी व दीन दिखाई नहीं देता।

नाहिं दरिद्र कोऊ दुखी न दीना, नाहि कोई अवुधन लच्छन हीना। [63]

निष्कर्षत इस प्रकार तुलसी ने भयावक समाज को रामराज्य के आदर्श का चित्र उसके सम्मुख प्रस्तुत किया। कलियुग का यर्थाथवादी ढ़ंग से वर्णन करते हुए उन्होंने जहाँ एक ओर समाज का ध्यान उसकी त्रुटियों की ओर दिलाया गया वहीं दूसरी

ओर शासकों को उचित नीति अपनाने का आदेश दिया। तुलसीदास ने राजा और प्रजा के बीच पिता और पुत्र का सम्बन्ध स्वीकार किया एवं प्रत्यक्ष करों का विरोध किया। साथ ही उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि राजा जो कर प्रजा से ग्रहण करे वह प्रजा की सुख सुविधाओं पर तो व्यय करे ही, साथ में यह भी ध्यान रहे कि प्रजा को उसका भान न हो। इस सम्बन्ध में उसे सूर्य का आदर्श अपनाना चाहिए। जैसे सूर्य की किरणें जल लेती रहती हैं। वह पता ही नहीं चलता, मेघ ही बरसते दिख पड़ते हैं। तुलसी के राम कहते हैं कि अहितकर कार्य करूँ तो मुझे निर्भय होकर रोक दो परन्तु स्वतंत्रता की सीमा है।"

जो अनीति कहू भाषौ भाई, तो मोहि बरजहु मय विसराई।[64]

सुधारात्मक था इसीलिए उनके रामराज्य का आदर्श न केवल उस समय के शासकों के लिए ही, वरन सभी समय शासकों के लिए ग्राह्य बन गया। सभी अच्छे राज्यों की तुलना रामराज्य से की जाने लगी। आधुनिक युग में महात्मा गाँधी ने भी स्वतंत्रता आन्दोलन का उद्देश्य रामराज्य की स्थापना बताया था। सम्भवतः इसीलिए तुलसीदास को लोकनायक कहकर भी पुकारा गया है।

*****

संदर्भ–सूची

1. वी0ए0 स्मिथ – 'अकबर द ग्रेट मुगल', पृ0 340
2. डा0 लज्जा देवी मोहन– "तुलसी और गोविन्द के राम काव्य, क्लासिकल पब्लिसिंग कम्पनी, दिल्ली,1987 , पृ0 31
3. डा0 अम्बाप्रसाद सुमन–"तुलसी काव्य चिन्तन",, पृ0 17
4. डा0 चरनदास शर्मा– तुलसी के काव्य में नैतिक मूल्य, भारतीय ग्रन्थ निकेतन, नई दिल्ली, 1971, पृ0 122
5. ओमकार त्रिपाठी– विनयपत्रिका एक तुलनात्मक अध्ययन, पृ0 31
6. वही , पृष्ठ 33 पर उद्वत
7. डिस्ट्रिक्टि गजेटियर ऑफ द युनाईटेड प्रिसेंस वो0, XXI बाँदा 1909, पृ0 28–56
8. डा0 शीलवती गुप्ता– तुलसी साहित्य में राजनीतिक विचार, पृ0 5 पर उद्वत
9. रामचन्द्र शुक्ल– तुलसी ग्रन्थावली, भाग–3,नागरी प्रचारिणी सभा काशी,1979, पृ0 154
10. तुलसीदास– रामचरित्रमानस बालकाण्ड, पृ0 87, दोहा 12
11. डा0 शीलवती गुप्ता– तुलसी साहित्य में राजनीतिक विचार, पृ0 11 पर उद्वत
12. तुलसीदास रामचरित्रमानस, बालकाण्ड, पृ0 51
13. तुलसीदास रतनावली, पृ0 76
14. तुलसीदास कवितावली, पृ0 24
15. तुलसीदास रामचरित्रमानस, पृ0 7
16. डा0 ओमकार त्रिपाठी– विनयपत्रिका एक तुलनात्मक अध्ययन, पृ0 52
17. तुलसीदास कवितावली, पृ0 20
18. डा0 रामप्रसाद मिश्र– तुलसी एक अध्ययन, पृ0 28 पर उद्वत
19. डा0 लल्लनराय– तुलसी की साहित्य साधना, पृ0 28 पर उद्वत
20. वही, पृ0 20–21 पर उद्वत
21. डा0 शिव सिंह सरोज– हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ0 29

22. माताप्रसाद गुप्त— तुलसीदास ,पृ0 136

23. वही, पृ0 36

24. लज्जादेवी मोहन— तुलसी का युग, व्यक्तितत्व और कृतित्व, पृ0 44

25. वही, पृ0 44 पर उद्धृत

26. माता प्रसाद गुप्त— तुलसीदास ,पृ0 126,

27. लल्लनराय— तुलसी की साहित्य साधना, पृ0 54

28. माता प्रसाद गुप्त—तुलसीदास, पृ0 12

29. डा0 ओमकार त्रिपाठी— विनयपत्रिका एक तुलनात्मक अध्ययन, पृ0 38—39

30. लज्जादेवी मोहन— तुलसी और गोविन्द काराम काव्य, पृ0 43

31. डा0 बचन देव कुमार— तुलसी के भक्तयात्मक गीत, पृ0 98

32. लज्जादेवी मोहन— पृ0 45

33. डा0 बचन देव कुमार— तुलसी के भक्त्यातमक गीत, पृ0 107 पर उद्धृत

34. लज्जा देवी मोहन— तुलसी और गोविन्द के रामकाव्य, पृ0 46

35. वही, पृ0 44

36. वही, पृ0 46

37. वही, पृ0 47

38. वही, पृ0 49

39. वही, पृ0 सं0 52

40. अम्बा प्रसाद सुमन— तुलसी काव्य चिंतन, पृ0 7

41. डा0 सरोज गुप्ता— रामचरित्रमानस की सुक्तियों का विवेचनात्मक अध्ययन, राजस्थान प्रकाशन, जयपुर, 1988,पृ0 187

42. श्रीमद् भागवत गीता— अनुवादक हनुमान प्रसाद पौद्दार, स्कन्थ 3, अध्याय 15, श्लोक 33, पृ0 150

43. डा0 ओमकार त्रिपाठी— विनयपत्रिका एक तुलनात्मक अध्ययन, पृ0 57 उद्धृत

44. वही, पृ0 58

45. डा0 चरनदास शर्मा– तुलसी के काव्य में नैतिक मूल्य, पृ0 364

46. डा0 सत्यनारायन शर्मा– रामचरित्रमानस में भक्ति, पृ0 3

47. तुलसीदास रामचरित्रमानस, उत्तराकाण्ड, पृ0 519/क

48. डा0 गीता गुप्ता– तुलसी का काव्य सिद्धांत, पृ0 135

49. वही, पृ0 137

50. तुलसीदास, विनयपत्रिका, पृ0 39, छन्द 23

51. पुरीदास चौपड़ा– भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास भाग–2, मैकमिलन इण्डिया, प्रा0लि0, दिल्ली, पृ0 119

52. डा0 गोविन्द राम शर्मा– सूर की साहित्य साधना, पृ0 5

53. डा0 बचन देव कुमार–तुलसी के भक्तयात्मक गीत, पृ0 250

54. गोपीनाथ शर्मा– राजस्थान का इतिहास, पृ0 512 शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी,आगरा

55. डा0 जय सिंह नीरज–राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ0 सं0 23

56. वही, पृ0 24

57. डा0 उदयशंकर भानू भट्ट– तुलसी काव्य और मीमांशा, पृ0 202

58. जी0एन0 शर्मा– सोशल लाईफ एण्ड मेडेविल राजस्थान, पृ0 236

59. डा0 सचदेव सक्सेना– मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन, पृ0 363

60. लज्जा देवी मोहन– तुलसी और गोविन्द के राम काव्य, पृ0 45

61. डा0 मौहम्मद मलिक– आलाबार संतों की तमिल प्रबन्धन और हिन्दी कृष्ण काव्य, पृ0 96

62. नाभादास भक्तमाल टीका, पृ0 22

63. तुलसीदास रामचरित्रमानस, दोहा 6, पृ0 644

64. वही, पृ0 647